पुस्तक समीक्षा

'नक्सलबाड़ी पहले और बाद में, स्मृतियां और मूल्यांकन'

कुछ विचारधारात्मक–राजनैतिक गलतियों के साथ एक सार्थक प्रयास

नक्सलबाड़ी आंदोलन के बारे में एक महत्वपूर्ण पुस्तक वर्ष **2009** में 'नक्सलबाड़ी पहले और बाद में स्मृतियां और मूल्यांकन **(Naxalbari Before and After, Reminiscences and Appraisal)'** नाम से प्रकाशित हुई। पुस्तक के लेखक वयोवृद्व नक्सलवादी नेता का. सुनीति कुमार घोष हैं। **1967** में नक्सलबाड़ी आंदोलन के फूट पड़ने के बाद वे आल इंडिया कोआर्डिनशन कमेटी ऑफ कम्युनिस्ट रिवोल्युशनरीज **(AICCCR)** और उसके बाद गठित पार्टी सी पी आई (एम एल) की पहली केन्द्रीय कमेटी के सदस्य रहे हैं। उन्होंने सरोज दत्त के साथ पार्टी पत्रिका लिबरेशन का कई वर्षो तक सम्पादन किया। ये सब बातें पुस्तक में लिखी गयी बातों की प्रमाणिकता को स्थापित करती हैं और का. घोष के प्राधिकार को साबित करती हैं। पुस्तक इस तरह से भारत के क्रांतिकारी आंदोलन के एक दस्तावेज का दर्जा हासिल कर लेती है। का. सुनीति कुमार घोष ने यह काम करके भारत के क्रांतिकारी आंदोलन की बहुत बड़ी सेवा की है। हम खुले दिल से उनके इस काम की प्रशंसा करते है।

पुस्तक दो भागों में विभक्त है। पहले भाग का शीर्षक 'भारत नक्सलबाड़ी के पहले **(India before Naxalbari)'** तथा दूसरे भाग का शीर्षक 'नक्सलबाड़ी और उसके बाद **(Naxalbari and after)'** है। पुस्तक में कुल मिलाकर **17** अध्याय हैं। चार अध्याय पहले भाग से और शेष दूसरे भाग से सम्बन्धित हैं। परिशिष्ट में दो दस्तावेज दिये गये हैं जिनमें पहला चीनी पत्रिका पीकिंग रिव्यू का एक विवादास्पद लेख है जिसमें **2001** में नई सहस्त्राब्दी के शुरुआत के साथ सर्वहारा क्रांति के विजय की घोषणा की गई थी। यह लेख **1969** में प्रकाशित हुआ था। परिशिष्ट में दूसरे दस्तावेज में सोरेन बसु की चीन यात्रा (मध्य **1970**) के दौरान चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के नेता चाऊ एन लाई व कांग शेंग से हुई बातचीत के सोरेन बसु द्वारा स्मृति के आधार पर लिखे गये अंश हैं। चीन के नेताओं ने भारत की नवगठित पार्टी सीपीआई (एमएल) की कई नीतियों की घोर आलोचना की थी।

पुस्तक क्योंकि अंग्रेजी में लिखी गयी है अतः इस लेख में सभी जगह पुस्तक के उद्वृत अंशों का हिन्दी अनुवाद हमारा है।

पुस्तक भारत के इतिहास के सबसे बड़े परिवर्तन वाले एक कालखण्ड को समेटे हुए है। सत्ता हस्तांतरण से लेकर नक्सलबाड़ी आंदोलन के समय को यह अपनी विषय वस्तु बनाती है। मोटे तौर पर यह **1945–46** से लेकर **1972–73** के समय में भारतीय समाज में घट रही घटनाओं को और उसमें भी विशेषकर भूमि प्रश्न से जुड़े आंदोलनों को अपने अध्ययन का विषय बनाती है। लेखक की पक्षधारता भारतीय सर्वहारा वर्ग के प्रति असंदिग्ध है अतः वे यहीं से खड़े होकर अपना सारा विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

का. सुनीति कुमार घोष ने इस पुस्तक में भारतीय समाज का वही विश्लेषण किया है जो भारत के अधिकांश माले ग्रुप करते हैं। वे भारतीय समाज को अर्द्वसामंती अर्द्व–औपनिवेशिक समाज और उसके अनुरूप भारत में क्रांति की मंजिल को नवजनवादी क्रांति घोषित करते हैं। इस विश्लेषण के बावजूद वे कई सारी गलत अवस्थितियों की बेबाक आलोचना करते हैं (जिनकी आगे चर्चा की जायेगी) और उसमें उनका दृष्टिकोण लगातार आत्म आलोचना का बना रहता है। नक्सलबाड़ी आंदोलन के बाद भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (एमएल) की स्थापना और उसके बाद शुरू हुए बिखराव के दौर में अपनायी गयी ढेरों गलत अवस्थितियों की आलोचना वैज्ञानिक और मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधारा के अनुरूप है। इस पुस्तक का दूसरा भाग इस मामले में विशेष रूप से उल्लेखनीय है और इसे (वैसे तो पूरी पुस्तक को ही) मार्क्सवादी–लेनिनवादी आंदोलन के हर कार्यकर्ता और नेता को पढ़ना चाहिए। का. सुनीति कुमार घोष ने यदि यह काम दो दशक पूर्व किया होता तो शायद भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन को सही अवस्थितियां ग्रहण करने में काफी मदद होती और कुछ नहीं यह तो हुआ ही होता कि सही विचारधारात्मक व राजनैतिक अवस्थितियां ग्रहण करने के लिए चल रहे संघर्ष, आत्मआलोचना, पुनर्मूल्यांकन जैसी प्रवृत्तियों को ठीक बल मिलता।

का. सुनीति कुमार घोष भारत में नवजनवादी क्रांति और विशेषकर भारतीय समाज को अर्द्व–सामंती अर्द्व–औपनिवेशिक मानने वाली क्रांति के मुख्य विचारक और प्रस्तोता रहे हैं। वे अपने दृढ़ मत को विभिन्न पुस्तकों व लेखों के माध्यम से प्रस्तुत करते रहे हैं। तथ्यों व उनके विश्लेषण के माध्यम से वे यह साबित करने की कोशिश करते रहे हैं कि भारतीय समाज में ऐसे परिवर्तन नहीं आये हैं कि भारतीय समाज के विश्लेषण व क्रांति की मंजिल को बदलने का कोई प्रश्न उठे परन्तु इस पुस्तक में उन्होंने कई ऐसी बातें व नीतियां प्रस्तुत कर डाली हैं जो उपरोक्त पर कई प्रश्न खड़े कर देती है। इस विषय पर हम आगे चर्चा करेंगे। यहां पर हम सिर्फ यह कहना चाहते हैं कि मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधारा की सही समझ पर खड़े होने पर ऐसा होना लाजिमी है। का. सुनीति कुमार घोष इस पुस्तक में जब भारत और चीन की तुलना करते हैं तो वे कई ऐसी बातें कहते हैं जिन्हें भारत की कम्युनिस्ट लीग पिछले कई दशकों से कह रही है। ऐसे ही वे संसदीय चुनाव के बारे में लेनिनवादी धारणा को जैसे ही प्रस्तुत करते हैं कि यह सवाल रणनीति का नहीं रणकौशल का है वैसे ही वे भारतीय संसदीय प्रणाली के चरित्र पर भी प्रश्न खड़ा कर देते हैं। यह सवाल उठ खड़ा होना लाजिमी हो जाता है कि भारत में 'एक अर्द्व–सामंती, अर्द्व–औपनिवेशिक देश' में यह जनवाद कैसे और क्योंकर है।

पुस्तक पर विस्तार से चर्चा करने के लिए हम पुस्तक में दिये गये अध्यायों के अनुसार ही चलेंगे।

जैसे कि पहले बता दिया गया है कि पुस्तक दो भागों में विभक्त है। पहले भाग का शीर्षक 'भारत नक्सलबाड़ी के पहले **'(India before Naxalbari')'** है जिसमें चार अध्याय हैं। पहले अध्याय का शीर्षक भारतीय राज्य : एक स्वतंत्र सम्प्रभु राज्य या एक अर्द्व–औपनिवेशिक पर निर्भर राज्य **'(The Indian State:an Independent Soverign or a Semi-Colonial Client State)'** है। दूसरा अध्याय : भारतीय अर्थव्यवस्था, **1947** से **1970** की शुरुआत तक **'(ndian Economy, 1947 to the Early 1970's)',** तीसरा अध्याय भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन : विभाजन और विचारधारात्मक मुद्दे **'(The Communist Movement in India : Split and Ideological Issues)'** तथा चौथा अध्याय : गहराता संकट **'(The Deepening Crisis)'** शीर्षक से हैं।

इस खंड के पहले अध्याय में का. सुनीति घोष ने भारतीय राज्य के चरित्र पर सवाल खड़े किये हैं और स्थापित किया है कि **1947** में यद्यपि भारत स्वतंत्र नहीं हुआ था परन्तु उस समय एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ था कि भारत एक औपनिवेशिक देश से अर्द्ध–औपनिवेशिक देश में तब्दील हो गया था। भारत की ब्रिटेन पर निर्भरता कई साम्राज्यवादी देशों विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका पर निर्भरता में तब्दील हो गयी थी। का. सुनीति घोष के अनुसार एक अर्द्ध–उपनिवेश औपचारिक तौर पर स्वतंत्र है परन्तु वास्तविक तौर पर कई साम्राज्यवादी शक्तियों पर निर्भर है। वे कहते हैं कि घरेलू शासक देश के भीतर अपनी राजनैतिक शक्ति का उपयोग करता है परन्तु यह सब कुछ साम्राज्यवादियों पर निर्भरता के दायरे के ही भीतर ही करता है। का. सुनीति घोष की अर्द्ध–औपनिवेशिक, वास्तविक विऔपनिवेशीकरण, राष्ट्रीय आजादी जैसी धारणाओं को उन्हीं के शब्दों में देखें।

> यद्यपि भारत आजाद नहीं हुआ लेकिन एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। भारत एक उपनिवेश से अर्द्ध उपनिवेश बन गया। भारत की ब्रिटेन पर निर्भरता कई साम्राज्यवादी शक्तियों खासकर उसमें प्रमुख संयुक्त राज्य अमेरिका में तब्दील हो गई। एक अर्द्ध उपनिवेश ***औपचारिक*** तौर पर स्वतंत्र है परन्तु ***वास्तव में*** वह कई साम्राज्यवादी शक्तियों पर निर्भर है। इस 'अर्द्ध–निर्भर देश' में स्थानीय शासक वर्ग राजनैतिक सत्ता का उपयोग साम्राज्यवादी शक्तियों पर मूल रूप से निर्भरता के दायरे में करता है। पूंजीवादी साम्राज्यवादी दुनिया के अंग होने के नाते वे इस निर्भरता से छुटकारा पा भी नहीं सकते हैं। वे केवल लोगों के अंतहीन कष्टों और दीनता की कीमत पर साम्राज्यवादी एकाधिकारी पूंजी से संश्रय कायम व उसकी सेवा करते हुए उसी तरह से अपने अस्तित्व को बचा और विस्तार कर सकते हैं जैसा कि उन्होंने पहले किया है।
>
> वास्तविक विऔपनिवेशीकरण **' (genuine Decolonisat- ion)'** सच्ची आजादी के लिए आवश्यक है कि सम्राज्यवाद के साथ–साथ दलाल–सामन्तों को ***बलपूर्वक*** उखाड़ फेंक दिया जाय ... ...। वास्तविक विऔपनिवेशीकरण पूंजीवादी–साम्राज्यवादी व्यवस्था से पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद व राष्ट्र से विश्वासघात करने वाली सरकार को उखाड़ फेंकने तथा जैसा कि फैनन ने कहा है पूरे सामाजिक ढांचे में परिवर्तन की मांग करता है।
>
> राष्ट्रीय आजादी शांतिपूर्ण सौदेबाजी और समझौते का मामला नहीं है यह केवल लड़कर और जीतकर हासिल की जा सकती है ... । (पेज **27**, पैरा **2.3.4ए** जोर मूल में)

का. सुनीति कुमार घोष ने भारत के बारे में जो विश्लेषण पेश किया है वह अर्द्ध–उपनिवेश की परंपरागत समझदारी से मेल नहीं खाता है। अर्द्ध–उपनिवेश उपनिवेश बनने की पूर्व प्रक्रिया है। जिसमें किसी देश को उपनिवेश बनाने के लिए कई साम्राज्यवादी ताकतें होड़ कर रही होती हैं और उस देश के विभिन्न हिस्सों पर विभिन्न साम्राज्यवादी ताकतें स्थानीय सामन्ती शासकों के जरिये या सीधे ही कब्जे के लिए लड़ रहे हों। का. सुनीति घोष मानते हैं कि **1947** में भारत उपनिवेश से अर्द्ध–उपनिवेश बन गया और साथ ही एक नयी परिभाषा यह भी देते हैं भारत औपनिवेशिक तौर पर आजाद है परन्तु वास्तविक तौर पर गुलाम है।

यहां का. सुनीति घोष का दृष्टिकोण एक गम्भीर विचारधारात्मक–राजनैतिक दोष का शिकार है। इस दोष के अनुसार कोई देश पूंजीवादी–साम्राज्यवादी दुनिया का अंग होने के नाते राजनैतिक स्वतंत्रता हासिल ही नहीं कर सकता है। वे किसी देश को तभी स्वतंत्र मानेंगे जब वह पूंजीवाद–साम्राज्यवाद के चंगुल से पूर्ण रूप से मुक्त हो। पूर्ण मुक्त होने की शर्त यह है कि वह किसी भी तौर पर आर्थिक रूप से साम्राज्यवाद पर निर्भर न हो।

का. सुनीति घोष का यह दृष्टिकोण उस राजनीतिक प्रवृत्ति की ओर इशारा करता है जिसकी लेनिन ने 'साम्राज्यवादी अर्थवाद' कह कर आलोचना की। लेनिन की उदद्धृत निम्न बातों की रोशनी में आसानी से समझा जा सकता है कि का. सुनीति घोष क्यों कर व कैसे गलत हैं। लेनिन ने लिखा था,

> आत्मनिर्णय के विरोधियों के समस्त तर्कों का केन्द्रबिंदु यह दावा है कि सामान्यतः पूंजीवाद अथवा साम्राज्यवाद के अंतर्गत आत्मनिर्णय असाध्य है। असाध्य शब्द अक्सर भिन्न तथा ऐसे अर्थों में प्रयुक्त होता है, जो ठीक–ठीक निश्चित नहीं किये जाते हैं। ... ... साम्राज्यवाद के अंतर्गत ***सभी*** जनवादी मागें इस अर्थ में असाध्य हैं कि क्रांतियों के एक सिलसिले के बगैर वे राजनीतिक दृष्टि से या तो कष्ट साध्य हैं या सर्वथा असाध्य।
>
> परन्तु यह कहना कि आत्मनिर्णय आर्थिक अर्थ में असाध्य है, बुनियादी तौर पर गलत है। (पेज–**161**)
>
> ... ...
>
> एक देश की बड़ी वित्त पूंजी दूसरे, राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र देश के अपने प्रतिद्वन्द्वियों को सदा खरीद सकती है और बराबर खरीदती है। आर्थिक दृष्टि से यह पूर्णतया साध्य है। राजनीतिक समामेलन के बिना भी आर्थिक समामेलन पूर्णतया साध्य है और सतत रूप से होता रहता है। साम्राज्यवाद सम्बन्धी साहित्य में आप बराबर इस प्रकार के संकेत पायेंगे कि, मिसाल के लिए, अर्जेन्टाइन वास्तव में ब्रिटेन का व्यापारिक उपनिवेश है या यह कि पुर्तगाल वास्तव में ब्रिटेन का दास है, आदि। और यह सच है : इन देशों का ब्रिटिश बैंकों पर आर्थिक रूप से निर्भर होना, उन पर ब्रिटेन का कर्ज चढ़ना, उसकी रेलों, खानों, जमीनों आदि का ब्रिटेन के हाथ में चला जाना–इन सब की बदौलत ब्रिटेन उनकी राजनीतिक स्वतंत्रता का अतिक्रमण किये बिना उन्हें आर्थिक रूप से समामेलित कर देता है।
>
> जातियों के आत्मनिर्णय का अर्थ है उनकी राजनीतिक स्वाधीनता। साम्राज्यवाद जिस प्रकार सामान्यतः लोकतंत्र की जगह अल्पतंत्र स्थापित करने की चेष्टा करता है, उसी प्रकार वह जातियों की स्वाधीनता का अतिक्रमण करने की चेष्टा करता है, क्योंकि राजनीतिक समामेलन आर्थिक समामेलन को अधिक सहज और अधिक सस्ता (अफसरों को रिश्वत देकर अपनी ओर कर लेना, कन्सेशन हासिल करना, लाभप्रद कानून पास करवाना, आदि अधिक सहज है), अधिक सुविधाजक, अधिक शान्तिमय बना देता है। परन्तु साम्राज्यवाद के अंतर्गत आत्मनिर्णय की ***आर्थिक दृष्टि से*** असाध्यता की बात करना कोरी बकवास है। (लेनिन, 'मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अर्थवाद', पृष्ठ.**167**, पैरा.**3** व **4**, संकलित रचनाएं दस खण्डों में, खण्ड.**6**, प्र.प्र. मास्को, जोर मूल में)

लेनिन की बातों की रोशनी में हम देखें तो यह बिलकुल सम्भव था कि भारहत ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के चंगुल से आजाद होकर अपनी राजनैतिक सम्प्रभुता व स्वतंत्रता की घोषणा करे। भारत की स्वतंत्रता में भारत के मजदूरों, किसानों के अकूत बलिदानों के साथ तात्कालीन विश्व परिस्थिति ने भी विशेष भूमिका निभायी। दूसरे विश्व युद्व के साथ ब्रिटिश साम्राज्यवाद की हैसियत का गिरना, सोवियत संघ के नेतृत्व में समाजवादी खेमे का अस्तित्व में आना, भारत के पड़ोसी देश चीन में नवजनवादी क्रांति का विजय की ओर उन्मुख होना और अक्टूबर **1949** में क्रांति सम्पन्न होना, राष्ट्रीय मुक्ति की लड़ाई का एशिया व अनेका महाद्वीप में तीव्र होना जैसी घटनाएं इस बात के लिए माकूल परिस्थिति तैयार कर रही थी कि भारत का नवोदित शासक वर्ग–पूंजीपति वर्ग–जिसने साम्राज्यवाद और सामंतवाद से भारत में आसन्न क्रांति के मद्देनजर समझौते का रुख अपनाया था अपनी सत्ता को निरन्तर सुदृढ़ करता और विऔपनिवेशीकरण की प्रक्रिया को क्रमशः आगे बढ़ाता और उसने ऐसा ही किया।

का. सुनीति घोष की मुख्य गलती यह है कि वे इस सन्दर्भ में लेनिनवादी धारणा को नहीं समझ पाते हैं और इस तरह से वे ऐसी बातें करते हैं जो विरोधाभासी हैं और यहां तक कि वे मार्क्सवादी–लेनिनवादी आंदोलन के अधिकांश हिस्से (जो भारत को उन्हीं की तरह अर्द्ध सामन्ती–अर्द्ध औपनिवेशिक मानता है) में प्रचलित धारणाओं के खिलाफ भी चले जाते हैं। साम्राज्यवादी अर्थवादी जैसी धारणाओं का प्रभाव उन्हें ऐसी बातों को कहने को मजबूर करता है कि एक अर्द्ध उपनिवेश औपचारिक तौर पर आजाद होता है परन्तु वह वास्तविक तौर

पर साम्राज्यवाद पर निर्भर होता है कि वास्तविक विऔपनिवेशीकरण का अर्थ साम्राज्यवाद से पूर्ण विच्छेद व सामाजिक ढांचे में पूर्ण परिवर्तन है। कि भारतीय समाज में कोई उग्र परिवर्तन (**radical change**) नहीं हुए हैं इत्यादि।

का. सुनीति घोष की पुस्तक में मौजूद यह मुख्य विचारधारात्मक–राजनैतिक कमजोरी ही उन्हें ढेरों गलत निष्कर्षों की ओर ले जाती है। इस अध्याय में ढेरों तथ्य ऐसे हैं जिससे वह निष्कर्ष भी निकाले जा सकते हैं जो का. सुनीति घोष के राजनैतिक निष्कर्ष या थीसिस से भिन्न हों। खासकर भाकली (माले) लम्बे समय से अपने दस्तावेजों में तथ्य व तर्कपूर्ण ढंग से रख चुकी है कि भारत क्यों एक अर्द्ध सामन्ती अर्द्ध औपनिवेशिक देश नहीं है। यहां हम उन तर्कों को नहीं दुहराना चाहते हैं। का. सुनीति घोष उन तथ्यों को अपने संज्ञान में नहीं लेते है जो उनकी थीसिस से मेल नहीं खाते जैसे भारत उन सबसे पहले देशों में एक था जिसने चीन की नवजनवादी क्रांति के बाद गठित राजनीतिक सत्ता को मान्यता दी थी। भारत का शासक वर्ग अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता का उपयोग लगातार कर रहा था यद्यपि उसकी निर्भरता ब्रिटिश व अमेरिकी साम्राज्यवाद पर बनी हुई थी। लेनिनवादी धारणाओं को अपनाते ही भारत के शासक वर्ग का चरित्र व भूमिका स्पष्ट हो जाती है अन्यथा वह एक अनसुलझी हुई गुत्थी बना रहता है।

इस अध्याय में का. सुनीति कुमार घोष ने भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के बारे में कई ऐसी बातें कही हैं जो कि भारत के क्रांतिकारी आंदोलन की आम समझदारी के खिलाफ हैं। जैसे कि उनका कहना है,

> ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उसके वर्दी धारी चपरासी (**flunkeys**) इसलिए सफल हुए क्योंकि भाकपा का नेतृत्व **1936** से ही गैर क्रांतिकारी व गैर मार्क्सवादी था। (पृष्ठ.**19** पैरा.**1**)

इस खण्ड का दूसरा अध्याय, सत्ता हस्तांतरण से लेकर **1970** के शुरुआती वर्षों तक (लगभग **25** वर्ष) के कालखण्ड को लेकर भारतीय अर्थव्यवस्था के जरिये यह साबित करने की कोशिश करता है कि क्यों यह एक अर्द्ध–सामन्ती अर्द्ध–उपनिवेश है। इस अध्याय का शीर्षक 'भारतीय अर्थव्यवस्था : **1947** से **1970** के दशक की शुरुआत तक (**Indian Economy : 1947 to the Early 1970's)**' है।

इस अध्याय में मुख्य रूप से का. सुनीति कुमार घोष अपनी थीसिस क्योंकि भारत साम्राज्यवाद पर आर्थिक रूप से निर्भर है इसलिए राजनीतिक स्वतंत्रता की सारी बात निरर्थक है को पुष्ट करने के लिए व्यापक रूप से तथ्य देते हैं। साम्राज्यवाद के उन सब औजारों की चर्चा करते हैं जिसके जरिये वह अपनी पकड़ भारतीय अर्थव्यस्था पर बनाये रखता है। उनका विश्लेषण एक तरफा है और इस बात को पूरी तरह से नजरअंदाज कर जाता है कि सत्ता भारत के बुर्जुआ वर्ग के हाथ में आने के बाद उसने मार्क्सवादी साहित्य में वर्णित भूमि सम्बन्धों में बदलाव के लिए 'प्रशियाई रास्ते' को चुना और विभिन्न साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच मौजूद अंतर्विरोधों का अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता व सत्ता के जरिये इस्तेमाल किया। यह कम दिलचस्प नहीं है कि इस पूरे अध्याय में वे भारतीय शासक वर्ग के गुट निरपेक्ष आंदोलन और उसके राजनीतिक मंतव्यों की कोई चर्चा तक नहीं करते। वे साम्राज्यवादी शक्तियों के साथ भारतीय शासकों के समझौते, समर्पण, सांठगांठ को तो देखते हैं परन्तु उनके साथ उनके अंतर्विरोध, तनाव व उनके साथ उनकी सौदेबाजी करने की स्थिति व ताकत को नहीं देखते हैं।

इसी तरह वे अमेरिकी व सोवियत साम्राज्यवादियों के बीच सांठगांठ के पहलू को तो देखते हैं परन्तु उनके बीच कलह, तनाव व होड़ को नहीं देखते हैं। वे बताते हैं कि समाजवादी चीन को घेरने के लिए अमेरिकी व सोवियत साम्राज्यवादियों ने आपसी गठजोड़ कायम कर भारत के शासक वर्ग को एक मोहरे के बतौर चीन के खिलाफ इस्तेमाल किया था। भारत को मिलने वाली आर्थिक व सैनिक सहायता के मामले में अमेरिका व सोवियत साम्राज्यवादियों के बीच एका था। इसी चीज को वे भारत में सत्ता हस्तांतरण के बाद अपनायी गयी नीतियों व मिश्रित अर्थव्यवस्था के मॉडल में भी देखते हैं। उनके अनुसार यह मॉडल भारत के शासक वर्ग के साथ–साथ उसके आका अमेरिका, ब्रिटिश व सोवियत साम्राज्यवादियों की इच्छा व निर्देश के अनुरूप था। का. सुनीति कुमार घोष की विचारधारात्मक–राजनैतिक गलती उन्हें इस तरह इतिहास की गलत व्याख्या और निष्कर्षों की ओर ले जाती है। वे दूसरे विश्व युद्ध के बाद के इतिहास का जो अपने साथ कई जटिल परिघटनाओं को समेटे हुए था का बहुत एकतरफा और सरल विश्लेषण कर देते हैं।

भारत के शासक वर्ग के चरित्र का विश्लेषण करते हुए वे इस अध्याय (पूरी पुस्तक) में कहीं दलाल तो कहीं शत्रु सहयोगी (**Collabarationist**) शब्द का प्रयोग करते हैं। ये शब्द उनके लिए समान अर्थ रखने वाले हैं।

इस अध्याय की शुरुआत उन्होंने 'विकास के दो मॉडल' (**two model of Developement**) नामक उपशीर्षक से की है। इसमें उन्होंने भारत और चीन के विकास के मॉडल की बेतुकी तुलना की है। इस तुलना के मार्फत उन्होंने यह बताने की कोशिश की है कि चीन अपने मॉडल की वजह से कहां से कहां पहुंच गया और भारत और भी बुरी स्थिति में पहुंच गया। इस तुलना के जरिये वे भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता की निस्सारता को साबित करना चाहते हैं और आर्थिक प्रगति के जरिये सच्ची स्वतंत्रता और मुक्ति को स्थापित करना चाहते हैं। बेतुकी, निरर्थक व भ्रम फैलाने वाली यह तुलना मार्क्सवादी–लेनिनवादियों को यथार्थ के सटीक मूल्यांकन और उससे अपने लिए उचित कार्यभार निकालने के स्थान पर मनोगतवाद के दलदल में धकेल देती है। यहां पर हम फिर वहीं कहेंगे कि का. सुनीति कुमार घोष की साम्राज्यवादी अर्थवाद जैसी सोच उनसे यह तुलना और कई तरह की जुमलेबाजी करवाती है। यहां यह भी गौरतलब है कि का. सुनीति कुमार घोष का दृष्टिकोण भारत के माले आंदोलन में बहुप्रचलित दृष्टिकोण है। यह भारत के क्रांतिकारी आंदोलन में भारतीय समाज के विश्लेषण व भारत की क्रांति की मंजिल निर्धारित करने में प्रमुख बाधा के रूप में सामने आता है। यह दृष्टिकोण **1947** में हुए सत्ता हस्तान्तरण व उसके बाद **1950** में भारत को एक बुर्जुआ गणराज्य घोषित किये जाने को एक राजनैतिक प्रश्न के रूप में लेने के बजाय आर्थिक प्रश्न के रूप में ले लेता है और राजनीतिक स्वतंत्रता व सम्प्रभुता के सवाल को साम्राज्यवाद या एकाधिकारी वित्त पूंजी के प्रभुत्व से पूर्ण छुटकारे से जोड़ देता है और इसी तरह जनवाद को वर्गोपरि दृष्टिकोण से देखते हुए और काल्पनिक आदर्शात्मक छवि प्रदान करते हुए भारतीय जनवाद को पूर्ण रूप से नकार देता है। इस पूरे अध्याय में जो कि भारतीय अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण तीन दशकों को समेटता है। इसी कारण उत्पादन सम्बन्धों में आ रहे निरंतर परिवर्तनों की कोई चर्चा नहीं है। हां! पुस्तक के दूसरे भाग में जब का. घोष चीन के रास्ते और भारत के रास्ते की तुलना करते हैं तो भारत में सर्वहारा की विशाल आबादी की भी चर्चा करते हैं। इस रूप में वे अपनी पूरी पुस्तक में एक अजीब किस्म के द्वैत का परिचय देते हैं यानी राजनीतिक, रणनीति व रणकौशल की प्रस्थापनाएं तो भारत को अर्द्ध सामंती अर्द्ध औपनिवेशिक मानने से निकलती हैं परन्तु यथार्थ का वर्णन करते हुए, जीवन की चर्चा करते हुए वे उपरोक्त से बेमेल करते हुए बातें और नीतियां पेश करने लगते हैं। अगले भाग की चर्चा करते हुए हम इस पर ज्यादा बातें करेंगे।

इस अध्याय में का. घोष ने नेहरू के समाजवाद की अच्छी पोल खोली है साथ ही भारतीय अर्थव्यवस्था में साम्राज्यवाद के प्रभाव व हस्तक्षेप को भी अच्छे ढंग से रखा है परन्तु उन्होंने भारत के शासकों द्वारा अपनायी गयी नीतियों यथा विऔपनिवेशीकरण, संरक्षणवादी आर्थिक नीतियों, जमींदारों को केन्द्र में रखकर किये गये भूमि सुधारों व उनके पूंजीवादी फार्मरों में रूपान्तरण आदि बातों की कोई चर्चा नहीं की है। भारत को सत्ता हस्तान्तरण के पहले ब्रिटिश पूंजी ने एक सामंती समाज से अर्द्ध सामन्ती समाज में तब्दील कर दिया परन्तु आजादी के बाद उससे कहीं–कहीं ज्यादा पूंजी (का. घोष के शब्दों में ही) भारतीय समाज में क्या प्रभाव पैदा कर रही है इसकी चर्चा नहीं है। और उलट वे तथ्यों को ऐसे रूप में पेश करते हैं जिससे लगता है कि पूंजीवादी भारत औपनिवेशिक भारत से भी कृषि व औद्योगिक उत्पादन में

पीछे चला गया है। तुलना प्रतिशत के बजाय उत्पादन की मात्रा में की जाय तो दूसरी ही बात स्थापित होने लगती हैं। का. घोष इकानामिक टाइम्स में छपे एक लेख का हवाला देते हैं,

> 'विश्व कृषि उत्पादन में भारत का हिस्सा' पटेल बताते हैं कि सन् **1900** के **11** फीसदी से **1980** में गिर कर **9** फीसदी रह गया और इसी दौरान तीसरी दुनिया की कृषि में **25** फीसदी से गिरकर **17** फीसदी रह गया है। भारत का विश्व औद्योगिक उत्पादन में हिस्सा **1950** के **1.5** फीसदी से **1980** में **0.5** फीसदी तथा तीसरी दुनिया के उत्पादन में **1950** के **12** फीसदी से **1980** में तीन फीसदी रह गया है।" (पेज.**61**, पैरा–**1**)

इस तरह के तथ्य अपनी थीसिस को सिद्व करने के लिए का. घोष पूरी पुस्तक में स्थान–स्थान पर देते हैं। कई बार तो तथ्य भी संदेह उत्पन्न कर देते हैं कि वे कितने सही हैं। यहां दिक्कत यही है कि पहले का. घोष ने एक प्रमेय गढ़ ली है फिर वे उसे सही सिद्व करने के लिए मनमुताबिक तथ्य चुन और प्रस्तुत कर देते हैं। यह गलत प्रवृत्ति है।

खैर अब हम आगे बढ़ते हैं।

पुस्तक के प्रथम खण्ड का तीसरा अध्याय 'भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन : विभाजन और विचारधारात्मक मुद्दे **(the Communist Movement in India :Split and Ideological issues)'** शीर्षक से है। इस अध्याय में का. सुनीति कुमार घोष ने भारत के कम्युनिस्ट आंदोलन के साथ तात्कालीन विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन पर भी कई टिप्पणियां की हैं। उनकी कई अवस्थितियां मार्क्सवादी–लेनिनवादी–माओविचारधारा व आंदोलन की स्थापित अवस्थितियों से भिन्न हैं। कई बातें ऐसी हैं जो कि अकादमिक दायरे में (खासकर स्तालिन के बारे में) बहुप्रचलित हैं। ऐसी बातों से विचारधारात्मक भ्रम फैलने/फैलाने के अतिरिक्त कोई विशेष लाभ नहीं हुआ है। पहले हम भारत के कम्युनिस्ट आंदोलन के बारे में चर्चा करते हैं।

का. सुनीति कुमार घोष भारत के कम्युनिस्ट आंदोलन के बारे में **1951** से पहले भी बहुत अधिक आलोचनात्मक यहां तक कि निंदात्मक रुख रखते हैं। इस अध्याय की शुरुआत ही वे इन शब्दों के साथ करते हैं,

> भाकपा का इतिहास (और बाद में, ऐसे ही माकपा का भी) एक छोटे से कालखण्ड **1927–28** से लेकर **1934–35** को छोड़कर मुख्य तौर पर अवसरवाद का इतिहास है। पी.सी.जोशी जो कि भाकपा के तात्कालीन महासचिव थे ने **1944** में कांग्रेस के नेताओं को कम्युनिस्ट नेताओं का राजनैतिक पिता **(Political Father)** और अपने पार्टी सदस्यों को 'कम्युनिस्ट कांग्रेसी' **(Communist Congress man)** कहा था।(पेज.**67**)

का. सुनीति कुमार घोष पी.सी. जोशी के उपरोक्त वक्तव्य को इस पुस्तक में एक से अधिाक बार दोहराते हैं। भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के संशोधानवादी हो जाने से पूर्व का इतिहास वाम तथा दक्षिण भटकावों के कई उदाहरणों से भरा पड़ा है परन्तु इस सबके बावजूद उसे एक क्रांतिकारी पार्टी के रूप में ही मान्यता देनी होगी। दुनिया में ऐसी कोई क्रांतिकारी पार्टी नहीं हुई है जिसमें समय–समय पर वाम या दक्षिण भटकाव नहीं पैदा हुए। रूस और चीन की कम्युनिस्ट पार्टियों का इतिहास भी इस बात का गवाह है कि जब ये पार्टियां क्रांतिकारी थी तब उन्हें इस तरह के भटकावों और किस्म–किस्म के अवसरवाद का सामना करना पड़ा था।

का. सुनीति कुमार घोष की भाकपा की आलोचना की एक बड़ी वजह यह भी है कि वे उसकी गलतियों की विचारधाारात्मक, वर्गीय, संगठनात्मक आदि पहलुओं से जांच नहीं करते हैं और इस रूप में यदि भारत के क्रांतिकारी आंदोलन के लिए कोई आवश्यक सबक निकाल सकते थे वह नहीं निकाल पाते हैं। वैसे इस अध्याय में का. ने भाकपा और माकपा के संशोधानवाद का उनकी कांग्रेसों के दस्तावेजों के जरिये अच्छा खुलासा किया है।

भारत के कम्युनिस्ट आंदोलन का एक समग्र मूल्यांकन आज वक्त की जरूरत है परन्तु यह काम इक्का–दुक्का व्यक्तियों अथवा ग्रुपों द्वारा नहीं किया जा सकता है। यह काम अच्छे ढंग से तो भावी कम्युनिस्ट पार्टी ही कर सकती है। भारत के कम्युनिस्ट आंदोलन के इतिहास का सार संकलन करने के लिए वर्ग संघर्ष के अनुभवों से लैस व परिपक्व ऐसी टीम चाहिए जिसके पास पर्याप्त तथ्य और मार्क्सवादी–लेनिनवादी–माओ विचारधाारा की दृष्टि हो।

इस अध्याय में और पूरी पुस्तक में भी जो बात सबसे ज्यादा चुभने वाली है वह का. सुनीति कुमार घोष का स्तालिन के प्रति उपेक्षा व अवमानना से भरा दृष्टिकोण है। वे कई जगह स्तालिन की आलोचना करते हैं परन्तु उनकी ऐतिहासिक क्रांतिकारी भूमिका के बारे में एक भी शब्द नहीं कहते हैं। वे सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की बीसवीं कांग्रेस (फरवरी, **1956**) में दुश्चेव द्वारा रखे गये संशोधनवादी सिद्वान्तों की खूब चर्चा करते हैं परन्तु वे इसी कांग्रेस में दुश्चेव द्वारा स्तालिन पर बोले गये हमले व कुत्सा प्रचार के बारे में एकदम मौन साधा जाते हैं। वे माओ द्वारा स्तालिन के बारे में कही गयी बातों को रस्मी तौर पर भी नहीं दुहराते हैं। माओ ने स्टालिन की गलतियों की आलोचना करते हुए उन्हें महान मार्क्सवादी–लेनिनवादी घोषित किया था। उन्होंने स्तालिन की गलतियों के ऐतिहासिक व भौतिकवादी कारण स्पष्ट किये थे। इसी के साथ माओ ने स्टालिन के सवाल को विचारधाारा का सवाल घोषित किया था। ऐसा नहीं हो सकता है कि का. घोष इन बातों को न जानते हों वे अवश्य ही जानते होंगे परन्तु उन्होंने स्तालिन के बारे में माओ विचारधाारा मानने वाले से व्यक्ति का व्यवहार नहीं किया। कदाचित उनका रुख स्तालिन के बारे में 'मंथली रिव्यू' पत्रिका के सम्पादकों का सा है।

इस खण्ड के चौथे अध्याय का शीर्षक 'गहराता संकट **(the Deepening Crisis)'** है। इस अध्याय में का. सुनीति कुमार घोष ने नक्सलबाड़ी आंदोलन पूफट पड़ने से पहले देश में गहराते संकट का वर्णन किया है। यहां जो बात खास तौर पर गौर करने की है वह यह कि वे क्रांतिकारी परिस्थितियों की चर्चा आम तौर पर भारत में नवजनवादी क्रांति की मंजिल मानने वालों के ढंग से नहीं करते हैं। इस धाारा के लोगों द्वारा यह माना जाता है कि एक अर्द्वसामन्ती, अर्द्व–औपनिवेशिक समाज में सदा क्रांतिकारी संकट बना रहता है। वस्तुगत परिस्थितियां ऐसी होती है कि यदि आत्मगत शक्तियां ढंग से संगठित हों तो कभी भी क्रांति सम्पन्न हो सकती है। इस अध्याय में का. घोष खांटी लेनिनवादी दृष्टिकोण के आधाार पर बताते हैं कि किसी समाज में क्रांतिकारी परिस्थिति कब कही जायेगी। वे लेनिन की बातों को उद्वृत करते हैं और फिर उसके आधाार पर बताते हैं नक्सलबाड़ी के समय देश में क्रांतिकारी परिस्थिति मौजूद थी और यह उत्तरोत्तर विकसित होती जा रही थी। हम परिस्थितियों के इस मूल्यांकन पर ना भी जायें तो उससे भी अधिाक महत्वपूर्ण बात यह है कि का. घोष अपने इस अध्याय में लेनिनवादी धाारणाओं की ठीक स्थापना करते हैं। हमारे देश के क्रांतिकारी आंदोलन में हर वक्त देश में क्रांतिकारी परिस्थिति को बताना महज बचकानापन है और यह मार्क्सवाद–लेनिनवाद कि खिलाफ भी है। इस मामले में का.घोष का यह प्रयास लेनिनवाद के अनुरूप है। प्रकारान्तर से यह भी बताता है कि भारत में हर समय क्रांतिकारी परिस्थिति नहीं रही है जैसा कि इस धाारा के लोग सोचते हैं।

इस अध्याय में का. सुनीति कुमार घोष भारत–चीन युद्व के चरित्र के बारे में सही बातों को सामने लाते हैं तथा भाकपा के मार्क्सवादी–लेनिनवादी अवस्थितियों को अपनाने के स्थान पर अंधाराष्ट्रवादी व भारत के शासक वर्ग के पिछलग्गू हो जाने का सही खुलासा करते हैं। भारत के शासकों को अमेरिकी साम्राज्यवाद के उकसावे की कीमत चीन से मिली भारी पराजय के रूप में उठानी पड़ी। भाकपा में मौजूद ढेरों कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों ने चीन के ऊपर भारत द्वारा किये गये आक्रमण का खुलकर विरोधा किया था तथा उन्हें इसकी कीमत भारी दमन के रूप में चुकानी पड़ी।

इससे पूर्व के और इस अध्याय में भाकपा में विभाजन के बाद अस्तित्व में आयी माकपा के भी संशोधानवाद के रास्ते में ही चलते जाने का वर्णन किया है और इसके कारण कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों में छा रहे आक्रोश और माकपा के नेतृत्व से किये जा रहे संघर्ष का वर्णन किया है। वे लिखते हैं,

> जब भाकपा (मा) ने **1964** में पार्टी कार्यक्रम स्वीकार किया तो उसने जैसा कि पहले दर्ज किया जा चुका है कि नेतृत्व ने खुले वाद–विवाद और बहस की इजाजत नहीं दी। जान बूझकर उन्होंने मतभेद की हर आवाज का गला घोंट दिया। 'संशोधानवाद के खिलाफ अंतः पार्टी संघर्ष समिति (**Committe for Inner-Party Struggle against Revisionism)'**] 'चिंता' 'सूर्यसेन ग्रुप' जैसे कई सदस्यों वाले ग्रुपों ने अपने विचारों को दस्तावेज के मार्फत पार्टी सदस्यों में वितरण कर प्रचार किया।'' (पेज.**113.**पैरा.**12**)

इसके बाद वे सुशीतल राय चौधारी, असित सेन, परिमल दास गुप्ता द्वारा बनायी गयी 'संशोधानवाद के खिलाफ अंतः पार्टी संघर्ष समिति' के द्वारा तैयार किये गये दस्तावेज 'वर्तमान परिस्थिति और हमारे कार्यभार (**Present situation and our Tasks)'** के महत्वपूर्ण हिस्सों को प्रस्तुत करते हैं।

इस दस्तावेज में माकपा के नेतृत्व की तीखी आलोचना की गई थी और उनके सभी राजनैतिक दांव–पेंच (**Political tactics)** के चुनाव तक सिमट जाने की आलोचना की गयी थी। उभरते जन संघर्षों को चिर्हित करते हुए एक क्रांतिकारी लहर के उठान को महसूस किया गया था। जन संघर्षों (**Mass struggle)** पर विशेष जोर दिया गया था और यह भी चिर्हित किया गया था कि 'आम हड़ताल' का रूप दिनों दिन लोकप्रिय होता जा रहा है। इस दस्तावेज में 'पीपुल्स डेमोक्रेटिक स्टेट' बनाने के लक्ष्य को सामने रखा गया था। इस तरह यह दस्तावेज माकपा के संशोधानवाद के खिलाफ एक जुझारू कार्यक्रम प्रस्तुत करता है। इस दस्तावेज के लम्बे हिस्से को उद्धृत करने व उस पर टिप्पणी के साथ पुस्तक का पहला भाग समाप्त हो जाता है।

पुस्तक के दूसरे भाग का शीर्षक ***'नक्सलबाड़ी और उसके बाद (Naxalbari and After)'*** है। इस भाग में **13** अध्याय हैं। पुस्तक का यह भाग अधिाक पठनीय और रोचक है। तथ्यों से भरपूर यह हिस्सा इस कालखण्ड (**1967** से **1973**) में चली महत्वपूर्ण घटनाओं व बहस–मुबाहसे को रखने के साथ–साथ भारत के महान क्रांतिकारियों व जनता की शौर्यगाथा को भी सामने लाता है। का. सुनीति कुमार घोष क्योंकि शीर्ष नेतृत्व में रहे हैं अतः नक्सलबाड़ी विद्रोह के बाद उभरे नायकों की भूमिका, उनसे हुई भूलें–चूकें तथा वर्षों बाद पश्च दृष्टि से देखने पर अपनी गलतियों को चिर्हित करना तथा उसके प्रति आलोचनात्मक (साथ में आत्मआलोचनात्मक भी) रवैया भारत के आज और भविष्य के क्रांतिकारियों के लिए कई आवश्यक सबक पेश कर देता है।

इस भाग का पहला और पुस्तक के पांचवे अध्याय का शीर्षक 'नक्सलबाड़ी ने रास्ता दिखाया (**Naxalbari Showed the way)** है। यह शीर्षक भाकपा के **1958** में हुई अमृतसर कांग्रेस में स्वीकार किये गये प्रस्ताव 'केरल ने रास्ता दिखाया है (**Kerala shows the way)'** के जवाब में दिया गया है। गौरतलब है कि **1957** में केरल में भाकपा के नेतृत्व में एक गठबन्धान सरकार का गठन किया था। ई.एम.एस. नम्बूदरीपाद की इस 'कम्युनिस्ट सरकार' को नेहरू के नेतृत्व वाली केन्द्र सरकार ने **1959** में भंग कर दिया था।

इस अध्याय में नक्सलबाड़ी के महत्व के बारे में का. सुनीति कुमार घोष लिखते हैं,

> जब दोनों धाड़े जो कि भाकपा व भाकपा (मा) के नाम से जाने जाते थे ने मार्क्सवाद–लेनिनवाद के रास्ते को त्याग दिया और संशोधनवादी दिशा (**orientation)** से निर्देशित होने लगे, जब दुश्चेव और उसके उत्तरवर्त्तियों द्वारा 'नई दिशा' और 'नये विचार' के उपदेश दिये जा रहे थे तब नक्सलबाड़ी ने ऊंचे और साफ स्वर में घोषणा की वह मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओविचारधाारा के साथ खड़ी है। इसने जोरदार शब्दों में पहले जनता के जनवाद (पीपुल्स डेमोक्रेसी) और फिर समाजवाद के क्रांतिकारी पथ पर चलने की घोषणा की और संसदीय रास्ते का विरोधा किया। (पेज.**122**, पैरा.**3**)

इस अध्याय में का. सुनीति कुमार घोष नक्सलबाड़ी विद्रोह के फूट पड़ने के पहले कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों द्वारा माकपा के नव संशोधानवाद के खिलाफ संघर्ष खासकर का. चारू मजूमदार की भूमिका का उल्लेख करते हैं। चारू मजूमदार ने जनवरी **1965** से अप्रैल **1967** के बीच अपने प्रसिद्व 'आठ दस्तावेज' (**Eight document)** लिखे। इन दस्तावेजों में चारू मजूमदार ने 'मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओविचारधारा के झण्डे को ऊंचा उठाया और आधुनिक संशोधानवाद के खिलाफ युद्व घोषित किया।' इस दौरान उन्होंने कई सही बातें रखी हालांकि बाद में इनमें से कई सही विचारों को त्याग कर उन्होंने वाम संकीर्ण दुस्साहसवादी लाईन को अपना लिया। इन दस्तावेजों में चारू मजूमदार ने जन संगठनों, ट्रेड यूनियनों को अर्थवाद के खतरे से सावधाान करते हुए उनके निर्माण का आह्वान किया। क्रांतिकारी रास्ते पर चलने की पुकार देकर उन्होंने इस दौरान ढेरों पूर्व में स्थापित मार्क्सवादी–लेनिनवादी धारणाओं को प्रस्तुत किया। इसमें चुनाव में रणकौशलात्मक ढंग से भागीदारी का सवाल भी शामिल है। इसके साथ ही जो सबसे महत्वपूर्ण और गौर करने वाली बात है वह उनके द्वारा देहाती इलाकों में सशस्त्र संघर्ष का आह्वान है।

का. सुनीति कुमार घोष द्वारा दिये गये विवरण और अन्य संदर्भों से आज बहुत सुस्पष्ट है कि नक्सलबाड़ी विद्रोह एक जन विद्रोह था। किसानों के इस विद्रोह का नेतृत्व कम्युनिस्ट क्रांतिकारी कर रहे थे और आस पास के चाय बागान के मजदूरों ने किसानों के कंधो से कंधाा मिलाकर उनका साथ दिया था। नक्सलबाड़ी आंदोलन का वाम संकीर्ण दुस्साहसवादी 'व्यक्तिगत सफाये की लाईन' से कोई लेना–देना नहीं था। तब तक चारू मजूमदार सहित किसी ने भी 'व्यक्तिगत सफाये की लाईन' को अंगीकार नहीं किया था। यद्यपि चारू मजूमदार की उस समय की रचनाओं में यहां–वहां ऐसे कुछ विचार भ्रूण रूप में देखे जा सकते हैं। चारू मजूमदार के मशहूर 'आठ दस्तावेज' के कई किस्म के गंभीर वाम भटकावों को लिए होने के बावजूद क्रांतिकारी आंदोलन की धारोहर हैं।

इस अध्याय में का. सुनीति कुमार घोष ने विस्तार से नक्सलबाड़ी जन विद्रोह की पृष्ठभूमि और घटना की चर्चा की है। साथ ही उन्होंने कानू सान्याल, खोकन मजूमदार, जंगल संथाल, कदम मलिक जैसे नेताओं की भूमिका की भी चर्चा की है। का. सुनीति कुमार घोष **1973** में कानू सान्याल द्वारा लिखित 'नक्सलबाड़ी के बारे में कुछ और' (**More About Naxalbari)** नामक लेख की चर्चा करते हुए कहते हैं कि कानू सान्याल का यह कहना सही नहीं है कि इस मुकाम में चारू मजूमदार हमला करने वाली इकाइयां चाहते थे जो सिर्फ 'एक्शन' गावों के वर्ग दुश्मनों और दूसरे प्रतिक्रियावादियों की गुप्त हत्यायें करें, और कि उनका जोर राजनीतिक कार्य पर नहीं था। यह कहते हुए वे आगे कहते हैं :

> लेकिन ऐसा लगता है कि उन्होंने (चारू मजूमदार ने) जन संघर्षों के बजाय हमला करने वाली इकाइयों **(combat units)** और उनके कार्यभारों पर ज्यादा जोर दिया। (वही पृ.**127**)

का. घोष ने सान्याल और खोकन मजूमदार के हवाले से कहा है कि चारू मजूमदार के साथ बातचीत के बाद यह निर्णय लिया गया कि नक्सलबाड़ी क्षेत्र के पुराने कार्यकर्ता, वे जिस बात से सहमत हैं, वहीं काम करेंगे और दीपक विश्वास सहित नये कार्यकर्ता (जिसे चारू मजूमदार ने अपने आठ दस्तावेजों के साथ गावों में भेजा था) नक्सलबाड़ी से सटे हुए चातेरहाट–इस्लामपुर क्षेत्र में काम करेंगे।

> नक्सलबाड़ी उभार एक जन संघर्ष था। चारू मजूमदार द्वारा सुझायी गयी हमला करने वाली इकाइयां जैसी कोई चीज वहां नहीं गठित की गयीं। व्यक्तियों की गुप्त हत्याएं या जोतेदारों के मकानों को आग के हवाले करने जैसे काम संघर्ष का कोई

हिस्सा नहीं थे। चातेरहाट–इस्लामपुर क्षेत्र में दीपक और उनके सहयोगियों ने चारू मजूमदार के निर्देशों को लागू करने की कोशिश की थी। किसानों ने इसका समर्थन नहीं किया। जोतेदार खुद हमलावर हो गये। उन्होंने एक किसान की हत्या कर दी थी दीपक और उनके सहयोगियों को क्षेत्र छोड़कर भागना पड़ा। (वही, पृ.**127–128)**

यहां का. घोष ने नक्सलबाड़ी किसान उभार का. चारू मजूमदार की कार्यदिशा पर नहीं संगठित हुआ, इस बात को स्वीकार कर लिया है। लेकिन उन्होंने यह स्वीकारोक्ति कानू और खोकन के हवाले से की है। उन्होंने यह साफ तौर पर नहीं स्वीकार किया कि नक्सलबाड़ी इलाके में दो कार्यदिशाओं के बीच संघर्ष था, और कि नक्सलबाड़ी किसान उभार का. चारू मजूमदार की कार्यदिशा का निषेधा करके खड़ा हुआ था। माकपा और उसके नेताओं ने नक्सलबाड़ी जन विद्रोह को कुचलने के लिए भारत के शासक वर्ग के साथ–साथ किस तरह से जुगलबंदी कायम की इसका भी खुलासा किया गया है। इस अध्याय की समाप्ति पर का. सुनीति कुमार घोष ने जो बातें कहीं उनमें से कई गौर करने लायक हैं,

> वास्तव में, नक्सलबाड़ी ने एक नई सुबह का वायदा किया था–एक नये युग की सुबह जिसमें भारत से सामन्तवाद का नाश हो जाता और साम्राज्यवादी प्रभुत्व के हर निशान को मिटा दिया जाता, एक भारत जिसने जनवादी क्रांति के साथ राष्ट्रीय क्रांति को भी पूरा कर लिया होता। लेकिन प्रकाश की पहली ही किरणें प्रतिक्रिया के अंधाकार द्वारा लील ली गई और वायदे अधूरे रह गये। प्रकाश के बजाय अंधाकार भारत पर राज कर रहा है। सामन्ती और अर्द्व सामन्ती सम्बन्धा अभी भी देहातों में मौजूद हैं और अप्रत्यक्ष साम्राज्यवादी प्रभुत्व को अभी भी समाप्त किया जाना है।
>
> वायदे को पूरा करने में किस चीज ने बाधाा डाली? आम तौर पर पार्टी की दिशा और पार्टी की नीतियां ही क्रांति की सफलता या असफलता के लिए जिम्मेदार होती हैं। ... ... (पेज.**137**, पैरा.**2** व **3**)

पुस्तक का छठा अध्याय नक्सलबाड़ी आंदोलन के फूट पड़ने के बाद पूरे देश में इसके समर्थन में कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के खड़े होने और भाकपा (मा) से नाता तोड़ने और कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के पहले ऑल इंडिया कोऑर्डिनेशन कमेटी ऑफ कम्युनिस्ट रिव्ल्यूशनरीज (ए.आई.सी.सी.सी.आर.) के तहत इकट्ठे होने तथा उसके बाद सी.पी.आई. (एम.एल.) की स्थापना से सम्बन्धित है। इस अध्याय का शीर्षक 'नक्सलबाड़ी के पीछे एकजुटता और संगठित होना **(Rally Behind Naxalbari and Getting Organised)'** है।

का. सुनीति कुमार घोष ने इस अध्याय में विस्तार से भाकपा (मा) में रह रहे कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के आपसी एकजुटता तथा नेतृत्व के साथ संघर्ष की चर्चा की है। साथ ही उन्होंने बताया कि संशोधानवाद की कीचड़ में डूब चुका नेतृत्व अपनी पांतों से सभी कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को बाहर करने के लिए घटिया हथकंडे अपनाने से भी बाज नहीं आ रहा था। बेहद संक्षेप में हम यहां इस सबकी चर्चा इसलिए करेंगे ताकि पाठक इतिहास के इस दौर से परिचित हो सके हालांकि यह चर्चा पुस्तक पढ़ने का विकल्प नहीं हो सकती।

मई, **1967** में नक्सलबाड़ी विद्रोह के पूफट पड़ने के बाद उसके समर्थन में **14** जून, **1967** को कलकत्ता में 'नक्सलबाड़ी और कृषक संग्राम सहायक कमेटी' **(Committee in aid of Naxalbari and Peasent struggle)** का गठन किया गया। प्रमोद सेन गुप्ता इस कमेटी के अध्यक्ष, सुशीतल राय चौधारी व सत्यानन्द भट्टाचार्य उपाध्यक्ष तथा प्रमोद दास गुप्ता सचिव चुने गये। इस कमेटी का मकसद नक्सलबाड़ी के लिए समर्थन जुटाना तथा सशस्त्र संघर्ष का प्रचार करना था। इस कमेटी ने यूनाइटेड ंट सरकार की नीतियों व नक्सलबाड़ी का इसके द्वारा किये जा रहे दमन का विरोधा किया। इसके लिए दर्जनों मीटिंगों व रैलियों का आयोजन किया।

नक्सलबाड़ी के समर्थन में **1966** में गठित 'आल बंगाल स्टूडैंट्स कमेटी फॉर स्ट्रगल' भी आया। कलकत्ता में ऐसे ही 'प्रेजीडेंसी कान्सोलिडेशन' भी अस्तित्व में आया हुआ था, ने भी नक्सलबाड़ी का समर्थन किया।

भाकपा (मा) ने 'आपरेशन क्रास बो' **(Operation cross bow)** चलाकर पार्टी से कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को झूठे आरोप लगाकर बाहर का रास्ता दिखा दिया। इनमें चारू मजूमदार, कानू सान्याल, जगल संथाल, सुशीतल राय चौधारी, सरोज दत्त, परिमल दास गुप्ता, प्रमोद सेन गुप्ता आदि शामिल थे। का. सुनीति कुमार घोष **1966** में ही भाकपा (मा) को छोड़ चुके थे।

कई कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के सहयोग से जून **1966** के अंत में सुशीतल राय चौधारी को संयोजक बनाकर वेस्ट बंगाल स्टेट कोआर्डिनेशन कमेटी ऑफ कम्युनिस्ट रिवोल्युशनरीज **(WBSCCCR)** का गठन किया गया।

का. सुनीति कुमार घोष के अनुसार इसी बीच में बंगाली साप्ताहिक देशबर्ती (**6** जुलाई में पहला अंक, सुशीतल राय चौधारी चेयर मैन ऑफ बोर्ड ऑफ एडिटर्स, सरोज दत्ता एडीटर), लिबरेशन (अंग्रेजी मासिक, एडीटर–इन–चीफ–सुशीतल राय चौधरी, सुनीति कुमार घोष–एडीटर, पहला अंक **11** नवम्बर, **1967**) व एक बंगाली मैगजीन घटना प्रभा प्रकाशित किये गये।

इस अध्याय में का. घोष आगे बताते हैं कि किस तरह देश कि विभिन्न राज्यों में नक्सलबाड़ी की प्रेरणा से कम्युनिस्ट क्रांतिकारी नक्सलबाड़ी के समर्थन में अपने आपको संगठित करने लगे थे।

उत्तर प्रदेश में भाकपा (मा) के सेक्रेटरी शिव कुमार मिश्रा जो कि भाकपा (मा) की केन्द्रीय कमेटी के सदस्य भी थे ने **7** सितम्बर **1967** को एक सर्कुलर 'दि रिवोल्युशनरी पीपुल ऑफ द यूपी इन सपोर्ट ऑफ दि कृषक विरोधा (पीजेंट रिवोल्ट) इन नक्सलबाड़ी' नाम से जारी किया।

बिहार में 'बिहार स्टेट कोआर्डिनेशन कमेटी' (**9–10** दिसम्बर **1967**), ***दिल्ली*** में (**14** जनवरी **1968** को) दिल्ली स्टेट कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) की जनरल बाडी मीटिंग जो कि एक नई पार्टी के गठन के पक्ष में आ जाती है। इसी तरह उड़ीसा, तमिलनाडु, कर्नाटक, जम्मू और कश्मीर, केरल, आन्ध्र प्रदेश आदि राज्यों में इसी तरह की घटनाएं घटती हैं।

12–13 नवम्बर **1967** को सात राज्यों (तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, केरल, कर्नाटक, बिहार, उड़ीसा, और पश्चिम बंगाल) के प्रतिनिधियों के द्वारा 'ऑल इंडिया कोआर्डिनेशन कमेटी ऑफ रिवोल्युशनरीज इन दी सीपीआई (एम)' **(AICCR)** गठित की गई। ख्बाद में मई **1968** में इसका नाम सिर्फ ए.आई.सी.सी.सी.आर. कर दिया गया।, का. घोष इस कमेटी की बैठक की चर्चा करते हुए बताते हैं कि नवम्बर **1967** में कमेटी ने अपने सामने निम्न लक्ष्य रखे,

> **(1)** सभी स्तरों पर विशेषकर मजदूर वर्ग के नेतृत्व में नक्सलबाड़ी की तरह के किसान संघर्षों की तर्ज पर जुझारु और क्रांतिकारी संघर्षों को विकसित व उनके मध्य तालमेल बिठाना।
>
> **(2)** मजदूर वर्ग और अन्य मेहनतकशों **(toiling)** के जुझारु क्रांतिकारी संघर्ष अर्थवाद से लड़ने के लिए विकसित करना तथा इनकी दिशा कृषि क्रांति की ओर करना।
>
> **(3)** संशोधानवाद और नव–संशोधानवाद के खिलाफ समझौता विहीन विचारधाारात्मक संघर्ष छेड़ना और कामरेड माओ त्से तुघ के विचार जो कि वर्तमान युग का मार्क्सवाद–लेनिवाद को लोकप्रिय बनाना और इसके आधाार पर पार्टी **[CPI (M)]** के भीतर और बाहर के सभी क्रांतिकारी तत्वों को एकजुट करना।
>
> **(4)** कामरेड माओ त्से तुंघ के विचारों की रोशनी में भारत की परिस्थितियों का सटीक विश्लेषण करते हुए एक क्रांतिकारी कार्यक्रम और रणकौशलात्मक लाइन की तैयारी करना। (पेज.**152**)

इस अध्याय के आगे के पृष्ठों में का. सुनीति कुमार घोष ए.आई.सी.सी.सी. आर. की कई बैठकों और एकता के प्रयासों के मध्य उठ रही चुनौतियों की चर्चा करते हैं।

ए.आई.सी.सी.सी.आर. की अंतिम बैठक **19.22** अप्रैल **1969** को हुई। इसमें नयी पार्टी सी.पी.आई. (एम.एल) को गठित किया गया। यह तय किया गया कि नई पार्टी के गठन की घोषणा **1** मई **1970** को की जायेगी। चारू मजूमदार को **11** सदस्यीय सेन्ट्रल आर्गनाइजिंग कमेटी का सचिव बनाया गया। इस कमेटी के अन्य सदस्य थे। **(I)** सुशीतल राय चौधारी **(II)** शिव कुमार मिश्रा **(III)** कानू सान्याल **(IV)** सरोज दत्त **(V)** सत्य नारायण सिंह **(VI)** पंचाडी कृष्णामूर्ति **(VII)** आर.पी. सर्राफ **(VIII)** एल अप्पू **(IX)** सोरेन बोस **(X)** तेजेश्वर राव।

इस अध्याय में का. सुनीति कुमार घोष ने कई गलतियों को चिर्ति किया और सही अवस्थितियों को स्वीकारा है। इनमें कई गलतियां ऐसी ही थी जिनसे बचा जा सकता था। इनमें से कुछ की चर्चा करते हैं।

चुनाव में भागीदारी के सवाल पर ए.आई.सी.सी.सी.आर. मई **1968** की मीटिंग में कहा गया कि यह एक रणकौशल का नहीं बल्कि रणनीति का प्रश्न है। माओ विचारधारा और चीन की क्रांति के हवाले देते हुए भारत जैसे अर्द्व–सामन्ती अर्द्व–औपनिवेशिक देश जो कि वास्तव में सामन्ती है, में चुनाव में भागीदारी करना क्रांतिकारी पथ और सशस्त्र संघर्ष के रास्ते को छोड़ना है। इस अध्याय में का. सुनीति कुमार घोष इस लाइन की आलोचना करते हैं और सुस्थापित लेनिनवादी अवस्थितियों को रखते हैं। वे लिखते हैं,

> यह दुर्भाग्यपूर्ण था कि लेनिन और सीपीसी की शिक्षाओं और साथ ही साथ नक्सलबाड़ी के अपने अनुभव को अनदेखा कर दिया गया और हम एक तरफ संसदीय रास्ता जो कि वर्ग संघर्ष और क्रांति का विरोधा करता है तथा दूसरी तरफ क्रांति के लक्ष्य की सहायता करने के एक साधान के रूप में चुनाव में भागीदारी करने के बीच में विभेद को समझने में असफल रहे। (पेज.**139**, पैरा.**4**)

का. सुनीति कुमार घोष की चुनाव के मामले में यह सही पहुंच यदि आज भारत के क्रांतिकारी आंदोलन का हिस्सा बन जाय तो यह आंदोलन के हित में होगा। यह सही अवस्थिति है।

ऐसे ही एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न जन संगठनों और ट्रेड यूनियनों का निर्माण किया जाना चाहिए अथवा नहीं पर का. सुनीति कुमार घोष चारू मजूमदार द्वारा **1969** में ली गयी अवस्थितियों की सही आलोचना करते हैं। का. सुनीति कुमार घोष चारू मजूमदार के लिबरेशन में लिखे गये लेखों का हवाला देते हैं जिनमें उन्होंने लिखा था,

> ... ... यदि कोई स्वीकारता है कि भारत में इस समय क्रांतिकारी परिस्थिति मौजूद है तब वह निश्चित रूप से स्वीकार करेगा कि इस समय भारत में पार्टी बनाने का लक्ष्य है न कि जन संगठन। ...
>
> (पेज.**166**)
>
> क्रांतिकारी किसानों ने अपने संघर्ष के जरिये दिखा दिया है कि ना तो जन आंदोलन और न ही जन संगठन गुरिल्ला युद्व छेड़ने के लिए अतिआवश्यक है ... ... जन संगठन और जन आंदोलन में खुले और आर्थिक आंदोलन को बढ़ाने की प्रवृत्ति होती है और वह क्रांतिकारी कार्यकर्ताओं को शत्रु के सामने ले आते हैं जो कि शत्रु को आक्रमण करने में आसानी कर देता है। इसलिए, खुले जन आंदोलन और जन संगठन गुरिल्ला युद्व के विकास और विस्तार के मार्ग में अवरोधाक हैं। (पेज.**167**)

का. सुनीति कुमार घोष चारू मजूमदार के इस पूरे दृष्टिकोण की आलोचना मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओविचारधाारा के आधाार पर करते हैं और वे यह काम ठीक ढंग से करते हैं। वे लिखते हैं,

> ''पार्टी निर्माण को जन संगठनों और जन आंदोलनों के सापेक्ष खड़ा करना गलत है। एक दूसरे का विरोधा करने से कहीं दूर वे वास्तव में एक दूसरे के परिपूरक हैं। पार्टी निर्माण एक अवस्था का मामला नहीं है। यह लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। पार्टी विभिन्न जन संगठनों–ट्रेड यूनियनों, किसान समितियों, युवा एसोसिएशनों आदि के जरिये जनता से अपने सम्बन्धा बनाती है। और जन संगठनों के उन सबसे सक्रिय, सबसे ज्यादा वर्ग सचेत तत्वों को जो कि आर्थिक और राजनैतिक मांगों के लिए चलने वाले जन आंदोलनों में अपनी गतिविधियों के जरिये अपने को साबित कर चुके होते हैं, भर्ती करके मजबूत होती जाती है। मजदूर और क्रांतिकारी वर्गों के सबसे ज्यादा अग्रणी तत्व जो कि वर्ग संघर्ष में जंच व तपकर आये होते हैं को लगातार आत्मसात करके ही कोई पार्टी मजबूत हो सकती है। ना तो मार्क्सवादी–लेनिनवादी पार्टी अपने नाम को सार्थक और न ही अपने जन आधाार और न पी एल ए को सिर्फ सत्ता दखल की राजनीति के प्रचार और कुछ वर्ग शत्रुओं व पुलिस वालों की गुप्त हत्या करके बना सकती है। वर्ग शत्रुओं की गुप्त इकाइयों द्वारा की गई हत्या कई किसानों के हृदय को प्रसन्न कर सकती है परन्तु यह उन्हें सक्रिय योद्वा बनने के लिए नहीं तैयार कर सकती है।'(पेज. **167.168**)

का. सुनीति कुमार घोष की उपरोक्त बातों के बाद फिलहाल हम इस सिलसिले में कुछ और नहीं जोड़ना चाहेंगे।

इस अध्याय के आगे के पृष्ठों में का. सुनीति कुमार घोष एक और महत्वपूर्ण सवाल 'क्रांतिकारी प्राधिकार' **(Revolutionary Authority)** को उठाते हैं। का. सोरेन बोस ने फरवरी **1970** में लिबरेशन के अंक में एक लेख 'क्रांति में विजय हासिल करने के लिए हमें क्रांतिकारी प्राधिकार को स्थापित करना होगा **(to win victory in the Revolution we must establish Revolutionary Authority)*** शीर्षक से लिखा था, का हवाला देते हैं। इस लेख में उन्होंने लिखा,

> बिना क्रांतिकारी प्राधिकार के कोई क्रांति नहीं हो सकती है ... ... हमारा नारा है ***अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर*** हम निश्चित रूप से चेयरमैन माओ, वाइस चेयर मैन लिन पियाओ और महान, गौरवशाली और सही चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का अनुसरण करें तथा साथ ही साथ महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति की वैश्विक शिक्षाओं को लागू करेंऋ ***राष्ट्रीय स्तर पर*** : हम चेयर मैन माओ, वाइस चेयरमैन लिन पियाओ और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति वफादार रहें और साथ ही हम कामरेड चारू मजूमदार के नेतृत्व के क्रांतिकारी प्राधिकार को पूरे तौर पर स्वीकार करें। (पेज.**173**)

का. सुनीति कुमार घोष इस विचार को मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओविचारधारा विरोधाी विचार कह कर ठीक आलोचना करते हैं। वे कहते हैं चारू मजूमदार को क्रांतिकारी प्राधिकार के रूप में, एक अचूक व्यक्ति के रूप में पेश करना गलत था। चारू मजूमदार पर प्रश्न करने का अर्थ इस क्रांतिकारी प्राधिकार की थीसिस के अनुसार पार्टी और जनता का दुश्मन बन जाना था। इस पुस्तक में कई अन्य जगह भी वे सोरेन बोस के इस क्रांतिकारी प्राधिकार की थीसिस और उसके कारण उठने वाली समस्याओं की चर्चा करते हैं। का. सुनीति कुमार घोष के अनुसार **1970** में पार्टी की स्थापना कांग्रेस में यही एक विषय था जिस पर बहस हुई थी। उनके अनुसार जहां कई लोग (का. सोरेन बोस, का. असीम चटर्जी और कुछ अन्य) इस बात पर जोर देने लगे तब का. सत्यनारायण सिंह ने केन्द्रीय कमेटी में शामिल होने से इंकार कर दिया। लम्बी बहस के बाद जब चारू मजूमदार ने हस्तक्षेप करके यह कहा कि यह ठीक होगा कि उन्हें क्रांतिकारी प्राधिकार के रूप में न माना जाय तब जाकर यह बहस समाप्त हुई।

का. सुनीति कुमार घोष इस अध्याय में आन्ध्र प्रदेश के क्रांतिकारी कम्युनिस्टों द्वारा उठाये गये कई सवालों का हवाला देते हैं और उनके साथ ए.आई.सी.सी.सी.आर. में किये गये व्यवहार को गलत ठहराते हैं।

वे लिखते हैं **7–8** फरवरी को ए.आई.सी.सी.सी.आर. की बैठक में आन्ध्र प्रदेश स्टेट को–आर्डिनेशन कमेटी को यकायक और नौकरशाही पूर्ण ढंग से अलग कर दिया गया। ए.आई.सी.सी.सी.आर. के अनुसार ए.पी.एस.सी.सी. से उनके तीन मुद्दों पर मतभेद थे। पहला,

कि ए.पी.एस.सी.सी. चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति वफादार नहीं थी। दूसरा, कि ए.पी.एस.सी.सी. ने श्रीकाकुलम के संघर्ष का गर्मजोशी के साथ समर्थन नहीं किया था और तीसरा, कि ए.पी.एस.सी.सी. 'चुनाव के बायकाट' को रणकौशल का सवाल मानती थी न कि रणनीति **(strategy)** का और यह भी कि नागी रेड्डी ने दिये गये समय के भीतर आन्ध्र प्रदेश विधाानसभा से इस्तीफा नहीं दिया था।

इस पूरे घटनाक्रम पर का. सुनीति कुमार घोष टिप्पणी करते हुए कहते हैं,

> आज मुझे लगता है कि हम बंद दरवाजावाद **(close-doorism)** के अपराधी थे जिनकी हमारे साथ–साथ आन्ध्र के साथियों को बहुत कीमत चुकानी पड़ी। विचारधाारात्मक और राजनीतिक तौर पर आन्ध्र के साथी हमारे बेहद करीब थे, उनके और हमारे बीच बुनियादी मुद्दों पर विचारधाारात्मक और राजनैतिक एकमतता थी। (पेज.**174**,पैरा.**4**)

का. घोष जब यह कहते हैं कि आंध्र प्रदेश समन्वय समिति के साथी विचारधारात्मक और राजनीतिक तौर पर ए.आई.सी.सी.आर. के बहुत नजदीक थे तथा सभी बुनियादी मुद्दों पर विचारधाारात्मक व राजनीतिक एकता थी, तो वह इस बात का जिक्र नहीं करते कि उनका बुनियादी मतभेद जन दिशा के सवाल पर था। का. चारू मजूमदार के नेतृत्व में उस समय तक (फरवरी, **1969** तक) ए.आई.सी.सी.आर. की कार्यदिशा मूलतः आतंकवादी हो चुकी थी, जबकि आन्ध्र प्रदेश समन्वय समिति के साथी जन दिशा पर जोर दे रहे थे।

इस बात को **1970** के भाकपा (माले) के आठवीं कांग्रेस के दस्तावेजों और **1969** के आंध्र प्रदेश कमेटी द्वारा तैयार किये गये सम्मेलन **(1969)** के तात्कालिक कार्यक्रम दस्तावेज से साफ तौर पर देखा जा सकता है।

1970 में हुई कांग्रेस के दस्तावेज मूलतया आतंकवादी कार्यदिशा पर आधारित हैं, जबकि आंध्र कमेटी का तात्कालिक कार्यक्रम मूलतया जन दिशा पर आधाारित है।

आगे वे इस अध्याय में पार्टी गठन में की गई जल्दबाजी की आलोचना करते हुए कहते हैं, 'एक महान अवसर खो दिया गया'। का. सुनीति कुमार घोष का कहना है कि जल्दबाजी करने से वे कई ग्रुप और कमेटियां जो हमारे साथ शामिल हो सकती थी, उन्हें हमने संकीर्णतावाद के चलते अपने से दूर कर लिया था।

इस अध्याय में का. सुनीति कुमार घोष की व्यक्तिगत यादें खासकर उनकी अल्बानिया की यात्रा और वहां के समाज का चित्रण, राजनैतिक गूढ़ विषयों पर चिंतन और अतीत की गलतियों को याद करने के तनाव के बीच एक नयी ताजगी दे देता है हालांकि उनके वर्णन से अल्बानिया के बारे में कई सवाल उठ खड़े हो जाते हैं जिन्हें महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति की रोशनी में देखने पर उचित जवाब मिल जाता है।

अगले अध्याय (सातवें) का शीर्षक 'संघर्ष का फैलाव' **(The struggle spreads)** है। इस अध्याय में उन्होंने देश के अन्य भागों में अनाज और जमीन के लिए नक्सलबाड़ी के प्रभाव और कई स्थानों पर स्वतः स्फूर्त ढंग से पूफटे संघर्षों का अच्छा और विस्तार से वर्णन किया है। इस अध्याय के पृष्ठों में छोटा नागपुर, बिहार, उत्तर प्रदेश, केरल, पंजाब, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, असम, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल (बीर भूम डेबरा, गोपी बल्लवपुर आदि) में पूफटे संघर्षों जिनमें से कई का नेतृत्व कम्युनिस्ट क्रांतिकारी कर रहे थे का वर्णन होने के साथ–साथ एक किस्म का दस्तावेजीकरण भी है।

पुस्तक के आठवे अध्याय 'मजदूर वर्ग और अन्य शहरी संघर्ष **(The Working Class and Other urban Struggles)'** में मजदूरों, सरकारी कर्मचारियों (रेल और बिजली विभाग के कर्मचारियों के संघर्षों का खासतौर पर) आदि के **1968.70** के बीच के संघर्षों का वर्णन है।

पुस्तक का नवां अध्याय 'युवा विद्रोह' **(youth Revolt)** से सम्बन्धित है। इस अध्याय में जहां वे छात्रों–युवाओं द्वारा नक्सलबाड़ी के आह्वान पर निभायी गयी भूमिका की चर्चा करते हैं वहीं वे इस 'विद्रोह' के समय किताबें जलाने, राष्ट्रीय नेताओं, समाज सुधाारकों व रवीन्द्रनाथ टैगोर की मूर्तियां तोड़ने की आलोचना करते है। साथ ही वे इस बात की विस्तार से चर्चा करते हैं किस तरह भारत के शासक वर्ग ने अपनी पुलिस और सेना के दम पर छात्रों–युवाओं की आवाज को कुचला तथा सैकड़ों नौजवानों को मौत के घाट उतार दिया।

इस अध्याय में वे का. चारू मजूमदार द्वारा कही गयी कई बातों की आलोचना करते हैं। वे लिखते हैं,

> चारू मजूमदार तब सही नहीं थे जब उन्होंने कहा था कि छात्र जब स्कूल और कालेजों में पढ़ रहे होते हैं तब उन्हें साम्राज्यवादी शक्तियों के सम्बन्धा में हर बात के प्रति सम्मान करना सिखाया जाता है और 'इस तरह वे इन शक्तियों के पिछलग्गू **(lackeys)** या एजेन्ट बन जाते हैं। (पेज. **223,** पैरा.**3**)

> चारू मजूमदार ने छात्र संघों **(college unions)** को छात्रों को क्रांतिकारी रास्ते से भटकाकर प्रतिक्रिया के रास्ते पर ले जाने के लिए फेंका गया मछली का चारा **(baits offered)** कहा। वास्तव में, छात्र संघों के बारे में कुछ भी गलत नहीं है। यह इस बात पर निर्भर करता है उन्हें किस तरह नेतृत्व दिया जा रहा है। (पेज.**224ए** पैरा.**2**)

अगला अध्याय (दसवां) नवगठित पार्टी सी पी आई (एम एल) की पार्टी कांग्रेस से सम्बन्धित है। इसका शीर्षक है 'पार्टी कांग्रेस और उसके बाद **(The Party Congress and After)** है।

इस अध्याय में का. सुनीति कुमार घोष ने विस्तार से पार्टी कांग्रेस की तैयारी, दस्तावेज तैयार करने और फिर कांग्रेस की चर्चा की है। वे लिखते हैं,

> ''सेण्ट्रल आरगनाइजिंग कमेटी की मीटिंग जनवरी **1970** में हुई ...'' (पेज. **239**)

> ''सीओसी ने पार्टी कांग्रेस बुलायीः यह **15–16** मई **1970** को होगी (वास्तव में कांग्रेस केवल **15** मई को हुई)। पार्टी प्रोग्राम और पार्टी संविधान का मसौदा कांग्रेस के कुछ समय पहले वितरित किया गया।... ''(पेज.**240,**पैरा.**2**)

> ''सीओसी ने विभिन्न राज्यों के डेलीगेट्स का कोटा व विभिन्न राज्यों की कांेंस की तिथियां तय की। कांग्रेस के कुल डेलीगेट्स की संख्या **52** थी जिनमें से **41** विभिन्न राज्यों तथा **11** सीओसी के सदस्य थे। ...'' (पेज.**240,** पैरा.**3**)

> ''कांग्रेस ने पार्टी प्रोग्राम स्वीकारा जिसमें भारत को अर्द्व–सामन्ती, अर्द्व औपनिवेशिक देश बताया गया था। यह चिर्ति किया गया कि भारत के ऊपर चार विशाल पहाड़–यू एस के नेतृत्व वाला साम्राज्यवाद, सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद, दलाल नौकरशाह पूंजी और सामन्तवाद लदे हुए हैं। ये कहा गया कि ये सब मुख्य **(major)** अंतर्विरोधा हैं जिसमें साम्राज्यवाद बनाम व्यापक जनता का अंतर्विरोधा पहला प्रधाान **(principal one)** अंतर्विरोधा है। ... ... '' (पेज.**241,** पैरा.**1**)

> ''प्रोग्राम सर्व सहमति से स्वीकारा गया। इसकी कई खूबियां थी परन्तु इसकी अपनी सीमाएं भी थी। उदाहरण के लिए यह आकलन गलत था कि क्रांतिकारी वर्गों का संयुक्त मोर्चा केवल तभी निर्मित किया जा सकता है जब 'कम से कम देश के कुछ हिस्सों में लाल राजनीतिक सत्ता कायम हो गई होगी'। संयुक्त मोर्चा गठित करना एक चरण **(one stage)** का मामला नहीं है। ... ''(पेज.**241ए** पैरा.**2**)

> ''अगला इस बात पर जोर दिया गया कि 'हमारी जनवादी क्रांति के ***पूरे दौर*** में गुरिल्ला युद्व संघर्ष का बुनियादी रूप' होगा, यह बात पूरे तौर पर गलत थी। ... '' (पेज.**241,** पैरा.**3**)

> पार्टी संविधाान का मसौदा जो कि कांग्रेस के पहले पार्टी इकाइयों के बीच वितरित किया गया पूरे तौर पर स्वीकार लिया गया।''

(पेज.**242**,पैरा.**2**)

चारू मजूमदार ने कांग्रेस के सामने राजनैतिक–सांगठनिक रिपोर्ट रखी। रिपोर्ट में कहा गया कि अमेरिकी साम्राज्यवादियों का कम्बोडिया पर आक्रमण और पूरे हिन्द–चीन में युद्व का विस्तार 'तीसरे विश्व युद्व की शुरुआत' के रूप में चिन्हित किया जाय।''

(पेज. **242**, पैरा.**3**)

''रिपोर्ट में कहा गया कि वर्ग शत्रुओं के सफाये की लड़ाई **(battle)** 'वर्ग संघर्ष का उच्चतर रूप और गुरिल्ला युद्व तथा जनयुद्व **(people's war)** की शुरुआत है'। इसने वर्ग संघर्ष और वर्ग शत्रु के सफाये की लड़ाई को एक बराबर कर दिया। ... ..'' (पेज. **242**,पैरा.**4**)

''रिपोर्ट में कहा गया कि विभिन्न ग्रुप वर्ग शत्रु के सफाये के संग्राम जो कि 'हमारे संघर्ष का मुख्य आधाार **(plank)'** है का. माओ त्से तुघ के नाम पर विरोध कर रहे हैं। इनसे एकता पार्टी को संशोधानवाद के कीचड़ की ओर ले जायेगी। '' (पेज.**242**, पैरा.**5**)

... ...

''रिपोर्ट सर्व सहमति से स्वीकार ली गई। चारू मजूमदार ने कांग्रेस के सामने रिपोर्ट रखते हुए जो भाषण दिया था उसे भी सर्व सहमति से कांग्रेस के दस्तावेज के रूप में स्वीकारा गया। (पेज.**243**,पैरा.**4**)

चारू मजूमदार ने सेन्ट्रल कमेटी के नामों का एक पैनल प्रस्तुत किया। यह पैनल सर्व सहमति से स्वीकार लिया गया। चुने गये सदस्य थे, **(1)** चारू मजूमदार **(2)** सुशीतल राय चौधारी **(3)** शिव कुमार मिश्रा **(4)** कानू सान्याल **(5)** आर.पी. सर्राफ **(6)** अप्पू **(7)** सरोज दत्त **(8)** सत्य नारायण सिंह **(9)** वेम्पाटपू सत्यनारायण **(10)** अदिवटला कैलाशम **(11)** सौरेन बोस **(12)** महेन्द्र सिंह (यू पी से) **(13)** राज किशोर सिंह (बिहार) **(14)** गुरबक्स सिंह (बिहार) **(15)** अप्पला सूरी **(16)** नागभूषण पटनायक **(17)** कोडनडारमन **(झवकंदकंतउंद)** (तमिलनाडु से) **(18)** असीम चटर्जी **(19)** सुनीति कुमार घोष **(20)** अम्बाड़ी मेनन (केरल)

मुझे याद नहीं कि पंजाब से सोहल सिंह एक चुने सदस्य थे या उनके लिए जगह छोड़ दी गयी थी जिसे बाद में भरा जाना था। ...

... ... निम्न सदस्य पोलित ब्यूरो के लिए चुने गये : **(1)** चारू मजूमदार **(2)** सुशीतल राय चौधारी **(3)** शिव कुमार मिश्रा **(4)** कानू सान्याल **(5)** सरोज दत्त **(6)** सत्यनारायण सिंह **(7)** आर पी सर्राफ **(8)** एल अप्पू **(9)** सोरेन बोस (पेज. **245**, पैरा. **1,2,3**)

''चारू मजूमदार सर्व सहमति से जनरल सेक्रेटरी चुने गये। (वही, पैरा.**5**)

''चारू मजूमदार ने कहा कि वे भविष्य में कमेटी सिस्टम की इज्जत करेंगे। (वही पैरा. **8**,सेंन्ट्रल कमेटी की पहली बैठक में)

''सरोज दत्त और मुझे पार्टी पत्रों की जिम्मेदारी दी गयी। (पेज. **246**, पैरा.**3**)

''यह सेन्ट्रल कमेटी की पहली और आखरी बैठक थी ... । (पेज. **246**, पैरा .**4**)

का. सुनीति कुमार घोष ने 'वर्ग शत्रु के सफाये', 'तीसरे विश्व युद्व की सम्भावना', 'कमेटी सिस्टम' आदि के बारे में जो टिप्पणियां की हैं वे ठीक हैं उनके बारे में हम अपनी तरफ से कुछ और नहीं जोड़ना चाहेंगे।

ग्यारहवे अध्याय का शीर्षक 'चीनी मीडिया और हमारा संघर्ष' **(The Chinese Media and Our Struggle)** है। इस अध्याय में का. सुनीति कुमार घोष ने चीनी मीडिया के द्वारा नक्सलबाड़ी को दिये गये समर्थन की प्रशंसा के साथ इस बात को लेकर तीखी आलोचना की है कि कई दफा उसके द्वारा प्रस्तुत की गई बातें माओ की शिक्षा के खिलाफ होती थीं और इन विचारों के प्रभाव में आकर भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी भी गलत विचारों के वाहक बन जाते थे। चीनी मीडिया की भूमिका के बारे में वे लिखते हैं,

> ''लेकिन चीनी प्रेस हमेशा माओ त्से तुघ और हमारे महान मार्क्सवादी–लेनिनवादी शिक्षकों की शिक्षाओं की इज्जत नहीं करता था। 'भारत के ऊपर वसंत का वज्रनाद' **(Spring Thundur overIndia')** सहित चीनी लेखों में इस बात पर जोर दिया जाता था कि भारतीय क्रांति का रास्ता चीन की तरह ही होगा। ... ..''. । (पेज.**247ए** पैरा .**2**)

इसके बाद का. सुनीति कुमार घोष मार्क्स, एंगेल्स व लेनिन की शिक्षाओं को इस संदर्भ में रखते हैं और माओ की लैटिन अमेरिका की कम्युनिस्ट पार्टी के सम्बोधन को रखते हैं,

> ''चीन की क्रांति के अनुभव, यानी देहाती आधाार क्षेत्रों का निर्माण करना, देहातों की तरफ से शहरों को घेर लेना और अन्त में शहरों पर कब्जा कर लेना, सम्भवतः आपके बहुत से देशों में लागू नहीं हो सकेंगे, हालांकि वे संदर्भ सामग्री के रूप में आपके काम आ सकते हैं। मैं आपको विनम्रतापूर्वक परामर्श देना चाहूंगा कि चीन के अनुभवों को यांत्रिक रूप से लागू न करें। किसी भी अन्य देश के अनुभव केवल संदर्भ सामग्री के रूप में काम आ सकते हैं, उन्हें कठमुल्ला सूत्र नहीं समझना चाहिये। मार्क्सवाद–लेनिनवाद का सार्वभौमिक सत्य और आपके देश की ठोस स्थितियां – इन दोनों को एक दूसरे से मिलाना जरूरी है।''

(पेज.**248–249**, पैरा.**7**, हिन्दी अनुवाद, माओ त्से तुघ की संकलित रचनाएं, ग्रन्थ.**5**, पेज.**303**, पैरा.**3**)

इस उद्वरण के बाद का. सुनीति कुमार घोष लिखते हैं,

> ''जब चारू मजूमदार ने 'चीन का रास्ता हमारा रास्ता है' लिखा था तब इसे चुनौती नहीं दी गयी जैसा कि हम आगे देखेंगे यह हमारी मार्क्सवाद–लेनिनवाद– माओ विचारधाारा पर पकड़ की पोल खोल देता है। (पेज. **249**,पैरा.**2**)

इसी तरह चीनी मीडिया द्वारा झूठा आशावाद फैलाने की भी का. सुनीति कुमार घोष आलोचना करते हैं। चीनी मीडिया ने घोषित किया था कि तीसरी सहस्त्राब्दी जो कि **2001** में शुरू होगी पुरी दुनिया भर में सर्वहारा क्रांतियों की विजय हो जायेगी। इस तरह की बातों को चारू मजूमदार ने अपनी नीतियों और घोषणाओं का आधाार बना लिया था और वे स्वयं भी भारत में क्रांति की घोषणा करने लगे थे। का. सुनीति कुमार घोष चारू मजूमदार की ऐसी कई बातों की अपने इस अध्याय में तीखी और ठीक आलोचना की है। क्रांति के संदर्भ में चारू ने कहा था कि वे इस बारे में **1975** से आगे की बात नहीं सोचते हैं यानी भारत में क्रांति **1975** से पहले ही सम्पन्न हो जानी थी।

इस अध्याय में आगे का. सुनीति कुमार घोष गुरिल्ला युद्व को गुप्त वर्ग शत्रु के सफाये के बराबर रखे जाने की माओ के विचारों के आधाार पर ठीक व उचित आलोचना करते हैं।

बारहवां अध्याय सी.पी.आई. (एम.एल.) में चारू मजूमदार की लाइन विशेषकर वर्ग शत्रुओं की सफाये की लाइन के खिलाफ उठ खड़े हुए मतभेदों और विभाजन से सम्बन्धित है। इस अध्याय का शीर्षक 'और मतभेद तथा फूफट' **(More Differences and Disunity)** है।

तेरहवां अध्याय सोरेन बोस की चीन यात्रा और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं से उनकी मुलाकात तथा उनके द्वारा भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (एम.एल) की गलत विचारों की आलोचना व सुझाव से सम्बन्धित है। **29** अक्टूबर **1970** को सोरेन बोस की चीन के प्रधाानमंत्री चाऊ–एन–लाई तथा चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के पोलित ब्यूरो सदस्य कांग शेंग से मुलाकात हुई थी। इस अध्याय का शीर्षक 'चीनी नेताओं के सुझाव और पार्टी' **(the Chinese leader's suggestions and the Party)** है। चीन के नेताओं ने 'चीनी रास्ता हमारा रास्ता', 'चीन के चेयरमैन हमारे चेयरमैन' जैसे बातों की तीखी आलोचना की। 'संयुक्त मोर्चे', 'जन दिशा', 'सभी पार्टियों के बीच बराबरी के रिश्ते' जैसे मुद्दों पर सही मार्क्सवादी–लेनिनवादी बातें रखीं।

इस अध्याय में का. सुनीति कुमार घोष का. सोरेन बोस व का. चारू मजूमदार की इस बात की आलोचना की है कि उन्होंने समय रहते चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं की आलोचना व सुझावों को पूरी पार्टी में तो क्या पोलित ब्यूरो और सैन्ट्रल कमेटी के सदस्यों तक नहीं पहुंचने दिया।

चौदहवां अध्याय सी.पी.आई. (एम.एल) और नक्सलबाड़ी के समर्थन में उठ खड़ी हुई जनता के दमन के लिए केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा भारी मात्रा में सैन्य तैयारियों पर केन्द्रित है। केन्द्र व राज्य सरकार ने दमन व क्रूरता की सारी हदों को लांघ दिया। उसने अपनी पूरी ताकत झोंक दी। इस अध्याय का शीर्षक 'राज्य के बलों का विकास' (**Devlopment of the State Forces)** है। इस अध्याय में का. सुनीति कुमार घोष ने आंदोलन के नेताओं की सरकार के दमन के खिलाफ लड़ने की तैयारियों व गुप्त जीवन में बरते जाने वाले अनुभवहीनता व लापरवाहियों का भी खुलासा व आलोचना की है।

पन्द्रहवां अध्याय पुस्तक के सबसे महत्वपूर्ण अध्यायों में से एक है। इस अध्याय में का. सुनीति कुमार घोष ने मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधाारा के आधार पर चीन और भारत की तुलना की है। और चीन के रास्ते को भारत का रास्ता घोषित करने की तीखी आलोचना नक्सलबाड़ी के अनुभवों के आधाार पर भी की है।

इस अध्याय का शीर्षक 'क्या चीन का रास्ता, भारत का रास्ता है?' (**Is China's Path, India's path?)** है।

इस अध्याय में कई सारी बातें वही हैं जो भाकली (माले) लम्बे समय से भारत के क्रांतिकारी आंदोलन के सामने उठाती रही है। इनमें माओ की वे बातें भी हैं जिन्हें इस पुस्तक तथा इस समीक्षा में पहले उठा दिया गया है। भारत और चीन की भौतिक सामाजिक परिस्थितियों जैसे भारत में सर्वहारा की विशाल संख्या, केन्द्रीकृत सत्ता, संसदीय व्यवस्था जिसमें समय–समय पर चुनाव आयोजित होते हैं, भारत की आजादी की लड़ाई में सर्वहारा वर्ग द्वारा निभायी गयी क्रांतिकारी व नेतृत्वकारी भूमिका आदि आदि की ठीक चर्चा व तुलना इस अध्याय में का. सुनीति कुमार घोष ने की है।

सोलहवां अध्याय का शीर्षक 'महत्वपूर्ण काल का त्रासदीपूर्ण अंत' (**The tragic end of a momentous period)** है। इस अध्याय में का. सुनीति कुमार घोष ने कई कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों व नेताओं की हत्या और मृत्यु का जिक्र किया है। और कैसे आंदोलन टूट फूट व बिखराव का शिकार हो गया। यह अध्याय नक्सलबाड़ी आंदोलन के नेताओं के साहस, शौर्य, जनता के प्रति समर्पण, त्याग जैसे गुणों को सामने लाता है जिनके बगैर कोई क्रांतिकारी आंदोलन खड़ा नहीं हो सकता है।

पुस्तक के अंतिम अध्याय का शीर्षक 'मूल्यांकन' (**Appraisal)** है। इस अध्याय की शुरुआत उन्होंने इन शब्दों से की है,

> ''कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की मूल दिशा (**basic line)** सही थी। उन्होंने पीपुल्स डेमोक्रेसी व समाजवाद की ओर ले जाने वाले शांतिपूर्ण संसदीय रास्ते को नकार दिया और क्रांतिकारी रास्ते को आगे बढ़ाया। उन्होंने संशोधानवाद का विरोधा किया और मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधाारा के झण्डे को ऊंचा उठाया। यही कारण है कि हमारी पार्टी ने लम्बे समय से कष्ट उठा रही हमारे देश की जनता में महान आशा का संचार किया। यही कारण है कि हमारी पार्टी की चर्चा हमारे पार्टी प्रतिनिधि से करते हुए माओ त्से तुघ ने कहा था 'तुम्हारे कारण (**CPI (ML)** के कारण)' 'भारत की आशा जिन्दा है'। लेकिन कुछ नीतियां पूरे क्रांतिकारी संघर्ष के काल में नहीं परन्तु एक महत्वपूर्ण चरण में अपनायी गयी जो कि गलत थी और उन्होंने पार्टी को कम से कम एक काल के लिए नष्ट कर दिया। एक दम शुरू से ही एक वाम–दुस्साहसवादी प्रवृत्ति मौजूद थी। पहले यह कमजोर थी परन्तु बाद में, एक निश्चित चरण के बाद यह प्रभावी हो गयी।'' (पेज.**309,** पैरा.**1**)

इसके बाद का. सुनीति कुमार घोष आंदोलन का मूल्यांकन चार चरणों में बांट कर करते हैं। यह एक तरह से पुस्तक का सार संकलन व आंदोलन का मूल्यांकन है जिनमें पूर्व में कही गयी बातों पर मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधाारा के आधाार पर पुनः जोर दिया गया है।

पुस्तक और इस अध्याय का अंत का. सुनीति कुमार घोष माओ के इन शब्दों के साथ करते हैं,

> ''संघर्ष करना, असफल होना, फिर संघर्ष करना, फिर असफल होना, फिर संघर्ष करना ... ... जब तक विजय प्राप्त न हो जायऋ यह जनता का तर्क है, तथा वह भी तर्क के खिलाफ हरगिज नहीं जाएगी। यह दूसरा मार्क्सवादी नियम है।'' (पेज.**322,** अन्तिम पैरा, हिन्दी अनुवाद माओ त्से तुंग की सं. रचनाएं हिन्दी में खण्ड.**4,** पेज.**730,** पैरा.**2**)